* ओ३म् *

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यः

नवमो भागः

सौवरः

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यामष्टमो भागः

पठनपाठनव्यवस्थायामेकादशं पुस्तकम्

सौवरः

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत

संस्करण : छठा संस्करण, २०००
मूल्य : मूल्य
दयानन्दाब्द : रु. ५.००
संवत् : २०४२ वि०, सन् १९८५ ई०

प्रकाशक : वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
मुद्रक : वैदिक यन्त्रालय, अजमेर
दूरभाष : २१८३१

अथ भूमिका

इस सौवर ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन यही है कि जिससे सब मनुष्यों को उदात्तादि स्वरों की व्यवस्था का बोध यथार्थ हो जावे। जब तक उदात्तादि स्वरों को ठीक-ठीक नहीं जानते तब तक लौकिक-वैदिक वाक्यों वा छन्दों का स्पष्ट, प्रिय उच्चारण, गान और ठीक-ठीक अर्थ भी नहीं जान सकते। और उच्चारण आदि के यथार्थ होने के विना लौकिक-वैदिक शब्दों से यथार्थ सुखलाभ भी किसी को नहीं होता। देखो इस विषय में प्रमाणः—

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

[महाभाष्य अध्याय १। पाद १। आह्निक १]

जो शब्द अकारादि वर्णों के स्थान प्रयत्न पूर्वक उच्चारण नियम और उदात्तादि स्वरों के नियम से विरुद्ध बोला जाता है उसको **मिथ्याप्रयुक्त** कहते हैं, क्योंकि जिस अर्थ को जताने के लिये उसका प्रयोग किया जाता है उस अर्थ को वह शब्द नहीं कहता, किन्तु उससे विरुद्ध अर्थान्तर को कहता है। इसलिये उच्चारण किया हुआ वह शब्द अभीष्ट अभिप्राय को नष्ट करने से वज्र के तुल्य वाणीरूप होकर यजमान अर्थात् शब्दार्थसम्बन्ध

की सङ्गति करनेवाले पुरुष ही को दुःख दे देता है, अर्थात् प्रयोक्ता के अभिप्राय को बिगाड़ देना ही उसको दुःख देना है। जैसे (इन्द्रशत्रुः) शब्द स्वर के विरुद्ध से ही विरुद्धार्थ हो जाता है। **"इन्द्रशत्रुः"** तत्पुरुष-समास में तो अन्तोदात्त होता है। इन्द्र अर्थात् सूर्य का शत्रु मेघ बढ़कर विजयी हो। **"इन्द्रशत्रुः"** यहाँ बहुव्रीहि-समास में पूर्वपद प्रकृतिस्वर से आद्युदात्त स्वर होता है। और शत्रु शब्द का अर्थ यही है कि शान्त करने वा काटनेवाला। प्रमाण निरुक्त का—**इन्द्रोऽस्य शमयिता वा शातयिता वा** [निरु० अध्याय २। खण्ड १६] । सो तत्पुरुष-समास में तो इन्द्र नाम सूर्य का शत्रु शान्त करनेवाला मेघ आया और बहुव्रीहि-समास में सूर्य जिसका शत्रु शान्त करने वा काटने-वाला है ऐसा अन्य पदार्थ मेघ आया। जो पुरुष "सूर्य का शान्त करनेवाला **मेघ**" है, इस अभिप्राय से इन्द्रशत्रु शब्द का उच्चारण किया चाहता है तो उसको अन्तोदात्त उच्चारण करना चाहिये, परन्तु जो वह आद्युदात्त उच्चारण कर देवे [तो] उसका अभिप्राय नष्ट हो जावे, क्योंकि आद्युदात्त उच्चारण से बहुव्रीहि-समास में "मेघ का शान्त करने वा काटनेवाला **सूर्य**" ठहरेगा।

इसलिये जैसा अपना इष्ट अर्थ हो वैसे स्वर और वर्ण का नियमपूर्वक ही उच्चारण करना चाहिये। जब मनुष्य को उदात्तादि स्वरों का ठीक-ठीक बोध हो जाता है तब स्वर लगे हुए लौकिक [-वैदिक] शब्दों के नियत अर्थों को शीघ्र जान लेता है। जैसे किसी एक शब्द को आद्युदात्त स्वरयुक्त देखा तो जान लेगा कि अमुक अर्थ में अमुक 'ञित्' वा 'नित्' प्रत्यय हुआ है, इसलिये इसका यही अर्थ होना चाहिये, इससे विरुद्ध अर्थ नहीं हो सकता, ऐसा निश्चय स्वरज्ञ पुरुष को हो जाता है। जैसे—**स**

कर्त्ता । स कर्त्ता । इन दो वाक्यों में दो प्रकार के स्वर होने से दो ही प्रकार के अर्थ होते हैं। पहिले वाक्य में लुट् लकार की क्रिया है। अर्थ—वह अगले दिन करेगा। और दूसरे कृदन्त में तृच् प्रत्ययान्त शब्द है। अर्थ—वह करनेवाला पुरुष है, इत्यादि।

इसी प्रकार एक प्रकार के शब्दों का अर्थभेद स्वरव्यवस्था जानने से ही निकलता है। जो स्वरव्यवस्था का बोध न हो तो अर्थों का लौट-पौट व्यभिचार हो जाने से बड़ा अन्धेर फैल जावे। इसी प्रकार समासों के पृथक्-पृथक् नियतस्वरों को जान के उन-उन समासों के नियत अर्थों को शीघ्र जान लेता है, अर्थात् उदात्तादि स्वरज्ञान के विना अर्थ की भ्रान्ति नहीं छूटती। और उदात्तादि स्वरबोध के विना वेदमन्त्रों का गान और उच्चारण भी यथार्थ नहीं हो सकता, क्योंकि षड्जादि स्वर गानविद्या में उपयोगी होते हैं, वे उदात्तादि के विना नहीं हो सकते। जैसे :—

उच्चौ निषादगान्धारौ नीचावृषभधैवतौ ।
शेषास्तु स्वरिता ज्ञेयाः षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥

यह वचन याज्ञवल्क्यशिक्षा का है ॥

षड्जादिकों में निषाद और गान्धार तो उदात्त के लक्षण से, ऋषभ और धैवत अनुदात्त के लक्षण से तथा षड्ज, मध्यम और पञ्चम ये तीनों स्वरितस्वर से गाये जाते हैं। उदात्तादि के विना वेदमन्त्रों का उच्चारण भी प्रिय नहीं लगता और जब उदात्तादि के सहित उच्चारण किया जाता है तब अतिप्रिय मनोहर उच्चारण होता है। इस ग्रन्थ में स्वरव्याख्या संक्षेप से की

है, परन्तु जो मुख्य-मुख्य स्वरविषय के पाणिनीय अष्टाध्यायीस्थ सूत्र हैं, वे सब इसमें लिख दिये हैं, और सब अष्टाध्यायी की वृत्ति में लिखे जायेंगे ।

॥ इति भूमिका ॥

स्थान महाराणाजी का उदयपुर
संवत् १९३९ आश्विन वदी १२

(स्वामी)

दयानन्दसरस्वती

॥ ओ३म् ॥

* अथ सौवरः *

१–महाभाष्य—स्वयं राजन्त इति स्वराः,

अन्वग्भवति व्यञ्जनम् ॥ [महा० १ । २ । २९]

स्वर उनको कहते हैं कि जो विना किसी की सहायता से उच्चारित और स्वयं प्रकाशमान [हों,] और **व्यञ्जन** वे कहाते हैं कि जिनका उच्चारण स्वर के आधीन हो ॥ १ ॥

२–उच्चैरुदात्तः ॥ अष्टाध्यायी० अध्याय १ । पाद २ । सूत्र २९ ॥

मुख के किसी एक स्थान में जिस अच् का ऊंचे स्वर से उच्चारण हो, वह **उदात्तसंज्ञक** होता है ॥ जैसे—**औपगवः ।** यहाँ 'अण्' प्रत्यय का अकार उदात्त हुआ है ॥ २ ॥

३–महा०–आयामो दारुण्यमणुता खस्येत्युच्चैःकराणि शब्दस्य ॥ [महा० अध्याय १ । पाद २ । सूत्र २९]

उदात्त स्वर के उच्चारण में इतनी बातें होनी चाहिये—(आयामः) शरीर के सब अवयवों को रोक लेना, अर्थात् ढीले न रखना, (दारुण्यम्) शब्द के निकलते समय तीखा, रूखा स्वर निकले, और (अणुता खस्य) कण्ठ को रोक के बोलना चाहिये, फैलाना नहीं । ऐसे प्रयत्नों से जो स्वर उच्चारण किया जाता है, वह उदात्त कहाता है, यही उदात्त का लक्षण है ॥ ३ ॥

४–नीचैरनुदात्तः ॥ अ० १ । २ । ३० ॥

जो किसी एक मुखस्थान में नीचे प्रयत्न से उच्चारण किया हुआ स्वर है, उसको **अनुदात्त** कहते हैं ॥ जैसे—**औपगवः ।**

यहां जिनके नीचे तिर्छी रेखा है वे तीनों वर्ण अनुदात्त हैं ।। ४ ।।

५–महा०—अन्ववसर्गो मार्दवमुरुता खस्येति

नीचैःकराणि शब्दस्य ।। [महा० १ । २ । ३०]

अनुदात्त उच्चारण में (अन्ववसर्गः) शरीर के अवयवों को शिथिल कर देना, (मार्दवम्) कोमल, स्निग्ध उच्चारण करना, (उरुता खस्य) और कण्ठ को कुछ फैला के बोलना । इस प्रकार के प्रयत्न से उच्चारण किये स्वर को अनुदात्त कहते हैं, यही इसका लक्षण है ।। ५ ।।

६–समाहारः स्वरितः ।। अ० १ । २ । ३१ ।।

उदात्त और अनुदात्त गुण का जिसमें मेल हो वह अच् **स्वरितसंज्ञक** होता है ।। जो उदात्त स्वर है उसका कोई चिह्न नहीं होता, किन्तु बहुधा स्वरित वा अनुदात्त से पूर्व ही उदात्त रहता है । अनुदात्त वर्ण के नीचे जैसा (क॒) यह तिर्छा चिह्न किया जाता है । और स्वरित के ऊपर (क॑) ऐसा खड़ा चिह्न किया जाता है । दो गुणों को मिला के जो बनता है उसका तीसरा नाम रखते हैं । जैसे श्वेत और काला ये रङ्ग अलग-अलग होते हैं परन्तु जो इन दोनों को मिलाने से उत्पन्न होता है उसको (कल्माष) खाखी वा आसमानी [रंग] कहते हैं । इसी प्रकार यहाँ भी उदात्त और अनुदात्त गुण पृथक्-पृथक् हैं परन्तु जो इन दोनों को मिलाने से उत्पन्न होता है उसको स्वरित कहते हैं ।। ६ ।।

७–तस्यादित उदात्तमर्द्धह्रस्वम् ।। अ० १ । २ । ३२ ।।

जो पूर्व सूत्र में स्वरित विधान किया है उसके तीन भेद

होते हैं—ह्रस्वस्वरित, दीर्घस्वरित और प्लुतस्वरित। सो इन स्वरितों की आदि में आधी मात्रा उदात्त होती और [शेष] सब अनुदात्त रहती हैं। जैसे—क्व। कन्या। शक्तिकें३। यहां ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीनों क्रम से स्वरित हुए हैं।

इस सूत्र में ह्रस्व के कहने से यह सन्देह होता है कि दीर्घस्वरित और प्लुतस्वरित में उदात्त का विभाग न होना चाहिये, क्योंकि ह्रस्वसंज्ञा से दीर्घ प्लुतसंज्ञा भिन्नकालिक है। इसीलिये अर्द्ध ह्रस्व शब्द के आगे प्रमाण अर्थ में 'मात्रच्' प्रत्यय का लोप महाभाष्यकार ने माना है कि ह्रस्व का अर्द्ध भागमात्र अर्थात् आदि की आधी मात्रा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत किसी में हो उदात्त हो जाती है।

इस सूत्र के उपदेश करने में प्रयोजन यह है कि जो मिली हुई चीज़ होती है उसमें नहीं जाना जाता कि कौनसा कितना भाग है। जैसे दूध और जल मिलादें तो यह नहीं विदित होता कि कितना दूध और कितना जल है तथा किधर दूध और किधर जल है, इसी प्रकार यहां भी उदात्त और अनुदात्त मिले हुए हैं, इस कारण जाना नहीं जाता कि कितना उदात्त और अनुदात्त और किधर उदात्त और किधर अनुदात्त है। इसलिये सबके मित्र होके पाणिनि महाराज ने इस सूत्र का उपदेश किया है, जिससे ज्ञात हो जावे कि इतना उदात्त, इतना अनुदात्त तथा इधर उदात्त और इधर अनुदात्त है।

(प्रश्न) जो पाणिनि महाराज सबके ऐसे परम मित्र थे तो इस प्रकार की और बातें क्यों नहीं प्रसिद्ध कीं। जैसे स्थान, करण, प्रयत्न, नादानुप्रदान आदि ?

(उत्तर) जब व्याकरण अष्टाऽध्यायी बनाई गई थी उससे पूर्व ही शिक्षा आदि कई ग्रन्थ बन चुके थे, जिनमें स्थान, करण आदि का प्रकार लिखा है, क्योंकि शब्द के उच्चारण में जितने साधन हैं वे मनुष्य को प्रथम ही जानने चाहियें। और जो बातें उन ग्रन्थों में लिख चुके थे उनको फिर अष्टाऽध्यायी में भी लिखते तो पिष्टपेषण दोषवत् पुनरुक्तदोष समझा जाता। इसलिये जो बातें वहाँ नहीं लिखीं वे यहाँ प्रसिद्ध की हैं। तथा गणना से भी व्याकरण तीसरा वेदाङ्ग है इसलिये पाणिनिजी महाराज ने सब कुछ अच्छा ही किया है। जो इस सूत्र का प्रयोजन और इस पर प्रश्नोत्तर लिखे हैं सो सब महाभाष्य में स्पष्ट करके इसी सूत्र पर लिखे हैं * ॥ ७ ॥

८—एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ ॥ अ० १।२।३३॥

दूर से अच्छे प्रकार बल से बुलाने अर्थ में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीनों स्वरों का एकश्रुति अर्थात् एकतार श्रवण हो, पृथक्-पृथक् सुनने में न आवें, ऐसा उच्चारण करना चाहिये। जैसे—**आगच्छ भो माणवक देवदत्त ३**। यहाँ

* (तस्यादित०)—इस सूत्र के व्याख्यान में काशिकाकार जयादित्य और भट्टोजिदीक्षित आदि लोगों ने लिखा है कि इस सूत्र में ह्रस्वग्रहण शास्त्रविरुद्ध है, सो यह केवल उनकी भूल है, क्योंकि जो ह्रस्वग्रहण का कुछ प्रयोजन नहीं होता तो महाभाष्यकार अवश्य प्रसिद्ध कर देते, उन्होंने तो जो इसमें सन्देह हो सकता है उसका समाधान किया है कि अर्द्ध ह्रस्व शब्द के आगे 'मात्रच्' प्रत्यय का लोप जानो, जिससे दीर्घ प्लुत स्वरित में भी उदात्त का विभाग हो जावे। ह्रस्वस्यार्द्ध मर्द्ध ह्रस्वम्, एक मात्रा का ह्रस्व है, उसकी आधी मात्रा जो आदि में है वह उदात्त और शेष इससे परे सब अनुदात्त है। यह बात इस (अर्द्ध ह्रस्व) के ग्रहण ही से जानी गई॥

उदात्तानुदात्तस्वरित का पृथक्-पृथक् श्रवण नहीं होता। 'दूरात्' ग्रहण इसलिये है कि—**आगच्छ भो भवदेव।** यहां उदात्त, अनुदात्त और स्वरितों का अलग-अलग उच्चारण होता है ॥ ८ ॥

९—उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ॥ अ० ८। ४। ६६ ॥

सब स्वरप्रकरण में यह सामान्य नियम समझना चाहिये कि जो उदात्त से परे अनुदात्त हो तो उसको स्वरित हो जाता है ॥ जैसे—**ऋतेन।** यहाँ 'ते' उदात्त है, उससे परे नकार अनुदात्त [है उस] को स्वरित हो जाता है=**ऋतेन।** तथा— **गार्ग्यः।** यहाँ **'गा'** उदात्त है और **'र्ग्य'** अनुदात्त था उसको **'र्ग्य'** स्वरित हो जाता है। इसी प्रकार उदात्त से परे जहां-जहां स्वरित आता है वहां-वहां सर्वत्र असंख्य शब्दों में इसी सूत्र से अनुदात्त को स्वरित जानना चाहिये। और जहां उदात्त से परे अनेक अनुदात्त हों वहाँ एक को स्वरित [तथा] औरों को जो होना चाहिये सो आगे लिखेंगे ॥ ९ ॥

उदात्त से परे जो अनुदात्त, उससे परे उदात्त वा स्वरित होने में इतना विशेष है कि—

१०—नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ॥

अ० ८। ४। ६७ ॥

उदात्त से परे जिस अनुदात्त को स्वरितविधान किया है यदि उस [अनुदात्त] से परे उदात्त वा स्वरित हो तो उस अनुदात्त को स्वरित न हो। परन्तु गार्ग्य, काश्यप, गालव इन ऋषियों के मत को छोड़ के, अर्थात् इन तीनों के मत में तो जिससे परे उदात्त वा स्वरित हो उस अनुदात्त को भी स्वरित हो जावे।

परन्तु यह गार्ग्य आदि ऋषियों का मत वेद में प्रवृत्त नहीं होता, क्योंकि वेद सनातन हैं। वहां किसी का मत नहीं चलता। लौकिक प्रयोगों में गार्ग्य आदि का मत चल जाता है। वेद में सर्वत्र उदात्तस्वरितोदय हो तो भी अनुदात्त ही बना रहता है। जैसे—**कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम** [ऋ० १। २४। १]। यहां **'देवस्य नाम'** [में] नाम शब्द आद्युदात्त के परे होने से **'व'** उदात्त से परे **'स्य'** अनुदात्त को स्वरित नहीं हुआ। तथा— **नव्यं तदुक्थ्यम्** [ऋ० १। १०५। १२]। यहाँ तकार उदात्त से परे **'दु'** अनुदात्त को आगे **'क्थ्य'** स्वरित होने से भी स्वरित नहीं होता। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये। लौकिक उदाहरण— **गार्ग्य ऋषिः**। यहाँ 'गार्ग्य' और 'ऋषि' दोनों शब्द आद्युदात्त हैं। ऋकार उदात्त के उदय में अनुदात्त 'र्ग्य' को स्वरित नहीं होता= **गार्ग्य ऋषिः**। और गार्ग्य आदि के मत में= **'गार्ग्य ऋषिः'** ऐसा भी होता है॥ १०॥

अब एकश्रुतिस्वरविषय में लिखते हैं—

११–यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु॥ अ० १। २। ३४॥

यज्ञकर्म अर्थात् यज्ञसम्बन्धी कर्म करने में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं वहां उदात्त, अनुदात्त और स्वरित को एकश्रुतिस्वर हो, [अर्थात्] उदात्तादि का पृथक्-पृथक् श्रवण न हो, परन्तु जप करने में तथा न्यूङ्ख—किसी प्रकार के वेद के स्तोत्रों का नाम है—वहां और सामवेद में उदात्तादि के स्थान में एकश्रुति न हो, किन्तु तीनों स्वर पृथक्-पृथक् बोले जावें। जैसे—

समिधाऽग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन । [यजु० ३ । १] इत्यादि मन्त्र होम करते समय स्वरभेद के विना ही पढ़े जाते हैं । तीनों स्वर के विभाग से वेद-मन्त्रों का पाठ होना चाहिये, इस कारण यज्ञकर्म में भी पृथक्-पृथक् उच्चारण प्राप्त था, इसलिये इस सूत्र का आरम्भ है ॥ ११ ॥

१२–उच्चैस्तरां वा वषट्कारः ॥ अ० १ । २ । ३५ ॥

जो यज्ञकर्म में वषट्कार शब्द है वह विकल्प करके उदात्ततर हो और पक्ष में एकश्रुतिस्वर होता है । जैसे—**वषट्कारैः सरस्वती, वषट्कारैः सरस्वती ।** [यजु० २१ । ५३] यहां उदात्त और एकश्रुति दोनों का चिह्न न होने से एक ही प्रकार का स्वर दीख पड़ता है परन्तु उच्चारण में भेद जान पड़ता है ॥ १२ ॥

१३–विभाषा छन्दसि ॥ अ० १ । २ । ३६ ॥

वेदमन्त्रों के सामान्य उच्चारण करने में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित को एकश्रुति स्वर विकल्प करके होता है । एकश्रुतिपक्ष में उदात्तादि का भिन्न-भिन्न उच्चारण नहीं होता । सो ये दो पक्ष तीन वेदों में घटते हैं । सामवेद में तीनों स्वर भिन्न-भिन्न उच्चारण किये जाते हैं, क्योंकि (११ वें) सूत्र से सामवेद में एकश्रुति होने का निषेध कर चुके हैं ॥ १३ ॥

१४–न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः ॥

अ० १ । २ । ३७ ॥

जो सुब्रह्मण्या निगद में यज्ञकर्म में पूर्वसूत्र से एकश्रुति स्वर प्राप्त है सो न हो, किन्तु उसमें जो स्वरित वर्ण हों उनके स्थान

में उदात्त हो जावे ।। सुब्रह्मण्या एक निगद का नाम है। उसका व्याख्यान शतपथ ब्राह्मण में तृतीय काण्ड तृतीय प्रपाठक के प्रथम ब्राह्मण में सत्रहवीं कण्डिका से लेके बीसवीं कण्डिका पर्यन्त किया है। उस निगद में जितने शब्द हैं उन सब में स्वर का विशेष नियम समझना चाहिये ।।

भा०—सुब्रह्मण्यायामोकार उदात्तो भवति ।।

[अ० १। २। ३७]

सुब्रह्मन् शब्द से साध्वर्थ में 'यत्' प्रत्यय होके [सुब्रह्मण्य शब्द] स्वरितान्त होता है, उसका 'टाप्' [के अनुदात्त आकार के साथ एकादेश होके 'सुब्रह्मण्या' शब्द स्वरितान्त होता है, उसका उदात्त] ओकार के साथ एकादेश होके स्वरित [ही बना रहता है]। उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त आदेश हो जाता है, और तीन वर्ण अनुदात्त रहते हैं=**सुब्रह्मण्योम्** ।।

भा०—आकार आख्याते परादिश्च, वाक्यादौ च द्वे द्वे ।।

[अ० १। २। ३७]

जहां आख्यातक्रिया परे हो वहां उससे पूर्व का आकार और उस क्रिया का आदि वर्ण उदात्त होता है [और वाक्य के आदि में दो-दो वर्ण उदात्त होते हैं] जैसे **इन्द्र आगच्छ, हरिव आगच्छ** । यहां ऐसा समझो कि **'इन्द्र'** और **'हरिवः'** शब्द आमन्त्रित होने से आद्युदात्त हैं। उनके दूसरे वर्ण अनुदात्त हैं। उनको उदात्त से परे स्वरित हो जाता है। उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त करते हैं। इस प्रकार 'इन्द्र' शब्द सब उदात्त और 'हरिवः' शब्द में भी जो दो उदात्त और वकार अनुदात्त है, उसको पूर्व उदात्त के असिद्ध मानने से स्वरित नहीं होता।

'आगच्छ' में आकार तो प्रथम ही उदात्त है, उससे परे दोनों अक्षर अनुदात्त हैं। आकार उदात्त से परे गकार अनुदात्त को स्वरित होके इस सूत्र से स्वरित को उदात्त हो जाता है। इस प्रकार 'इन्द्र आगच्छ' इस वाक्य में एक छकार अनुदात्त और चार वर्ण उदात्त रहते हैं, तथा 'हरिव आगच्छ' इस वाक्य में वकार छकार दो वर्ण अनुदात्त और चार वर्ण उदात्त रहते हैं।

सुब्रह्मण्यो३मिन्द्र आगच्छ हरिव आगच्छ मेधातिथेर्मेष वृषणश्वस्य मेने गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जार। कौशिक ब्राह्मण गौतम ब्रुवाण श्वः सुत्यामागच्छ मघवन्।

'मेधातिथेर्मेष' यहां आमन्त्रित 'मेष' शब्द के परे पूर्व सुवन्त को पराङ्गवत् [भाव से] आद्युदात्त होके [शेष] सब अक्षर अनुदात्त हो जाते हैं। फिर 'मे' उदात्त से परे 'धा' अनुदात्त को स्वरित होकर उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त हो के आदि में दो उदात्त और चार वर्ण अनुदात्त रहते हैं।

इसी प्रकार 'वृषणश्वस्य मेने, गौरावस्कन्दिन्, अहल्यायै जार, कौशिक ब्राह्मण, गौतम ब्रुवाण' इन सब में दो-दो आदि में उदात्त और [शेष] सब वर्ण अनुदात्त रहते हैं।

'श्वस्' और 'सुत्या' शब्द अन्तोदात्त हैं। 'श्वस्' उदात्त शब्द से परे [सुत्या के] सु अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त हो जाता है। इस प्रकार तीनों उदात्त रहते हैं—**श्वः सुत्याम्।**

'आगच्छ मघवन्' यहां भी उदात्त आकार से परे गकार अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त हो जाता है। 'मघवन्' शब्द आमन्त्रित के होने से सब अनुदात्त हो जाता है। यहां जितने

पदों का व्याख्यान किया है वे सब सुब्रह्मण्या निगद के ही हैं। अब आगे एक अपूर्व बात लिखते हैं कि जो इस सूत्र से भी सिद्ध नहीं है ॥ १४ ॥

१५–वा०–सुत्यापराणामन्तः ॥ [अ० १ । २ । ३७]

सुत्या शब्द जिन से परे हो उनको अन्तोदात्त हो। [जैसे—] **द्व्यहे सुत्याम्, त्र्यहे सुत्याम्** । यहां 'द्व्यह' 'त्र्यह' शब्दों को अन्तोदात्त होके उससे परे 'सु' अनुदात्त को स्वरित और स्वरित को उदात्त हो जाता है ॥ १५ ॥

१६–वा०–असावित्यन्तः ॥ [अ० १ । २ । ३७]

वाक्य में जो प्रथमान्त पद है वह अन्तोदात्त हो। [जैसे—] **गार्ग्यो यजते** । 'गार्ग्य' शब्द प्रथम आद्युदात्त प्राप्त है। उसका बाधक यह अन्तोदात्त होके उस-उस उदात्त से परे [यजते के] यकार को स्वरित और स्वरित को इससे उदात्त हो जाता है, और 'यजते' क्रिया में अन्त्य के दो वर्ण अनुदात्त रहते हैं ॥ १६ ॥

१७–वा०–अमुष्येत्यन्तः ॥ [अ० १ । २ । ३७]

'अमुष्य' यह षष्ठी के एकवचन का संकेत है, जो षष्ठ्येकवचनान्त पद है वह अन्तोदात्त हो। जैसे—**दाक्षेः पिता यजते** । यहां 'दाक्षेः' शब्द षष्ठी का एकवचन है उस 'इञ्' प्रत्ययान्त को आद्युदात्तस्वर प्राप्त है, उसको अन्तोदात्त हो जाता है, और पिता शब्द 'तृच्' प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त ही है। अन्तोदात्त 'दाक्षि' शब्द से परे 'पि' अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त और अन्तोदात्त 'पितृ' शब्द से परे अनुदात्त यकार को स्वरित होकर उदात्त हो जाता है। इस प्रकार मध्य में चार उदात्त तथा आदि

में एक [और] अन्त में दो अनुदात्त रहते हैं=**दाक्षेः पिता यजते** ॥ १७ ॥

१८–वा०–स्यान्तस्योपोत्तमं चान्त्यश्च ॥

[अ० १ । २ । ३७]

जहां षष्ठी का एकवचन स्यान्त हो वहां उपोत्तम को अर्थात् [तीन या तीन से अधिक अच्‌वाले शब्दों में अन्त्य से पूर्व अच् को] उदात्त होता है, और उस शब्द को भी अन्तोदात्त हो जाता है । [जैसे—] **गार्ग्यस्य पिता यजते** । यहां तृतीय वर्ण 'स्य' और द्वितीय 'र्ग्य' को उदात्त और 'पिता यजते' यहां पूर्ववत् उदात्त होता है । इसलिये पांचवर्ण मध्य में उदात्त और आदि में एक [तथा] अन्त में दो अनुदात्त रहते हैं= **गार्ग्यस्य पिता यजते, वात्स्यस्य पिता यजते** ॥ १८ ॥

१९–वा०–वा नामधेयस्य ॥ [अ० १ । २ । ३७]

जो किसी का नामवाची स्यान्त षष्ठ्येकवचनान्त [शब्द है उसके उपोत्तम तथा अन्त्य] को विकल्प करके उदात्त होता है, पक्ष में जैसा प्राप्त है वैसा बना रहता है । [जैसे—] **देवदत्तस्य पिता यजते** । यहां 'त्तस्य' ये दो उदात्त और 'पिता यजते' यहां पूर्ववत् उदात्त होके मध्य में पांच वर्ण उदात्त और आदि [में तीन और] अन्त में दो-दो अनुदात्त हो जाते हैं=**देवदत्तस्य पिता यजते, यज्ञदत्तस्य पिता यजते** । और पक्ष में 'देवदत्त' शब्द अन्तोदात्त है, सो ज्यों का त्यों ही बना रहता है और 'पिता यजते' यहां पूर्ववत् स्वरित को उदात्त हो जाता है । जैसे—**देवदत्तस्य पिता यजते** ॥ १९ ॥

२०—देवब्रह्मणोरनुदात्तः ॥ [अ० १ । २ । ३८]

भा०—देवब्रह्मणोरनुदात्तत्वमेके ॥

[अ० १ । २ । ३८]

पूर्व सूत्र से सुब्रह्मण्या निगद में देव और ब्रह्मन् शब्द के स्वरित को उदात्त पाता है सो न हो, किन्तु उस स्वरित को अनुदात्त ही हो जावे ।

भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि जो देव और ब्रह्मन् शब्द को अनुदात्त कहते हो सो किन्हीं आचार्यों का मत है, अर्थात् विकल्प करके होना चाहिये । देव और ब्रह्मन् शब्द आमन्त्रित हैं, इससे विशेष वचन आमन्त्रित 'ब्रह्मन्' शब्द के परे पूर्व आमन्त्रित देव शब्द को विकल्प करके अविद्यमानवत् होने से पर आमन्त्रित को जहां एक पक्ष में निघात नहीं होता वहां दोनों आमन्त्रित को आद्युदात्त होकर उदात्त से परे दूसरा-दूसरा वर्ण स्वरित होके उसको फिर इस सूत्र से अनुदात्त हो जाता है जैसे—**देवा ब्रह्माणः ।** और दूसरे पक्ष में जहां पूर्व आमन्त्रित को विद्यमान मानते हैं, वहां पर आमन्त्रित को निघात होकर पूर्व आमन्त्रित को आद्युदात्त हो जाता है, पीछे 'दे' उदात्त से परे 'वा' अनुदात्त को स्वरित होके जिन के मत में अनुदात्त होता है, वहां **देवा ब्रह्माणः** ऐसा प्रयोग, और जिनके मत में स्वरित को अनुदात्त नहीं होता वहां पूर्व सूत्र से स्वरित को उदात्त होकर **देवा ब्रह्माणः** ऐसा प्रयोग होता है । और जिन आचार्यों का ऐसा मत है कि देव और ब्रह्मन् शब्द समानाधिकरण सामान्यवचन है, वहाँ ये ही दो प्रयोग होते हैं, क्योंकि अविद्यमानवत् का निषेध होने से पर आमन्त्रित को नित्य ही निघात हो जाता है ॥ २० ॥

२१–स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् ॥

॥ अ० १ । २ । ३९ ॥

स्वरित से परे संहिता में एक, दो और बहुत अनुदात्तों को भी पृथक्-पृथक् एकश्रुतिस्वर होता है ॥

भा०–एकशेषनिर्देशोऽयम् । अनुदात्तस्य चानुदात्तयोश्चानुदात्तानामिति ॥ [*] [अ० १ । २ । ३९]

भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि जो इस सूत्र में बहुवचनान्त अनुदात्त शब्द पढ़ा है, उसमें एकशेष समझना चाहिये, अर्थात् एक, दो और बहुत अनुदात्तों को भी पृथक्-पृथक् कार्य होता है। जैसे—**अग्निमीळे पुरोहितम्** [ऋ० १।१।१]। यहां 'मी' स्वरित से परे 'ळे' अनुदात्त को एकश्रुतिस्वर हुआ है। एकश्रुति का नियम यही है कि स्वरित से परे उस पर कोई चिह्न नहीं हो। **होतारं रत्नधातमम्** [ऋ० १ । १ । १] यहां 'ता' स्वरित से परे दो रेफ अनुदात्त वर्णों को एकश्रुतिस्वर हुआ है. तथा **इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति** [ऋ० १० । ७५ । ५] यहां 'मे' स्वरित वर्ण है, उससे परे 'ति' पर्यन्त सब अनुदात्त हैं, उन सबको एकश्रुतिस्वर इस सूत्र से हुआ है। 'संहिता' ग्रहण इसलिये है कि—**इमम् मे, गङ्गे, यमुने, सरस्वति, शतुद्रि** यहां पृथक्-पृथक् पदों पर अवसान होने से एकश्रुतिस्वर न हुआ ॥ २१ ॥

[* अनुदात्तस्य चानुदात्तयोश्चानुदात्तानां च = अनुदात्तानामिति ॥ सं० ॥]

२२–उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥ अ० १ । २ । ४० ॥

उदात्त और स्वरित जिससे परे हों उस अनुदात्त को एकश्रुतिस्वर न हो किन्तु सन्नतर अर्थात् अनुदात्ततर हो जावे। पूर्व सूत्र से सामान्य विषय में एकश्रुतिस्वर प्राप्त है, उसका इस सूत्र से विशेष विषय में निषेध किया है। जैसे—**अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिः** [ऋ० १ । १ । २] यहां 'ऋषि' शब्द आद्युदात्त के परे [रहते] भिस् विभक्ति को एकश्रुतिस्वर प्राप्त है, सो न हुआ, किन्तु उसको अनुदात्ततर हो गया। तथा **मरुतः क्व सुविता** [ऋ० १ । ३८ । ३] यहां 'क्व' शब्द स्वरित के परे [रहते] 'त' अनुदात्त को स्वरित नहीं होता, किन्तु अनुदात्ततर हो जाता है ॥ २२ ॥

२३–आद्युदात्तश्च ॥ अ० ३ । १ । ३ ॥

धातुओं वा प्रातिपदिकों से जितने प्रत्यय होते हैं, उन सब के लिये यह उत्सर्ग सूत्र है कि—सब प्रत्यय आद्युदात्त हों। जो एकाक्षर के ही प्रत्यय हैं, वे आद्यन्तवद्भाव से उदात्त हो जाते हैं। जैसे—**प्रियः**। यहां एकाक्षर 'क' प्रत्यय किया है। **आखनिकवकः** यहां 'इकवक' प्रत्यय आद्युदात्त हुआ है। इसके अपवाद विषय में अन्य प्रत्ययस्वरविधायक सूत्र बहुत हैं, उनमें से थोड़े यहां भी आगे लिखे हैं ॥ २३ ॥

२४–अनुदात्तौ सुप्पितौ ॥ अ० ३ । १ । ४ ॥

जो सुप् अर्थात् सु आदि इक्कीस और पित् प्रत्यय हैं, वे अनुदात्त हों। जैसे—**सोमसुतौ, सोमसुतः**। यहां सुप् में 'औ' तथा 'जस्' अनुदात्त होके उदात्त से परे स्वरित हो गये हैं।

[ऐसे ही] **भवति, पचति** इत्यादि, यहां शप् और तिप् पित् प्रत्यय होने से अनुदात्त हुए हैं ॥ २४ ॥

२५—अनुदात्तं पदमेकवर्जम् ॥ अ० ६ । १ । १५८ ॥

स्वरप्रकरण में यह परिभाषा सूत्र सर्वत्र प्रवृत्त होता है। जो दो वा अनेक कितने ही पदों का समास होता है, वह भी एक पद कहाता है। स्वरप्रकरण में जिस एक पद में उदात्त वा स्वरित जिस वर्ण को विधान करें, उससे पृथक् जितने वर्ण हों वे सब अनुदात्त हो जावें। इस बात का स्मरण सब स्वरप्रकरण में रखना चाहिये।

इस सूत्र का प्रयोजन महाभाष्यकार दिखलाते हैं—

का०—आगमस्य विकारस्य प्रकृतेः प्रत्ययस्य च ।
पृथक्स्वरनिवृत्त्यर्थमेकवर्जं पदस्वरः ॥

[महा० ६ । १ । १५८]

आगम, विकार, प्रकृति और प्रत्यय का पृथक् स्वर न होने के लिये इस सूत्र का आरम्भ किया है।

आगम—जो टित् कित् मित् चिह्न के साथ अपूर्व उपजन हो जाता है, उसका स्वर हो जावे। जैसे—**चत्वारः, अनड्वाहः** । यहां चतुर् और अनडुह् शब्द को 'आम्' आगम हुआ है, उसी का स्वर रहता और प्रकृतिस्वर की निवृत्ति हो जाती है, अर्थात् प्रकृति और आगम के दोनों स्वर एक पद में एक साथ नहीं रह सकते।

विकार—जो किसी वर्ण वा शब्द को आदेश हो जाता है। जैसे—**अस्थ्ना, दध्ना, अस्थानि, दधानि** । यहां अस्थि और

दधि शब्द प्रथम आद्युदात्त हैं, पश्चात् तृतीयादि अजादि विभक्तियों में इन [उदात्त] को अनङ् आदेश हो के प्रकृति और आदेश के दो स्वर प्राप्त हैं, सो नहीं होते, किन्तु प्रकृतिस्वर को बाध के आदेश का उदात्त स्वर हो जाता है।

प्रकृति—धातु वा प्रातिपदिक जिससे प्रत्यय उत्पन्न होते हैं। जैसे—**गोपायति, धूपायति**। यहां प्रकृतिस्वर 'गोपाय' 'धूपाय' धातु को अन्तोदात्त और प्रत्ययस्वर 'आय' प्रत्यय को आद्युदात्त दो स्वर प्राप्त हैं, सो न हों किन्तु प्रत्ययस्वर को बाध के प्रकृतिस्वर हो जावे। प्रत्यय—जो धातु वा प्रातिपदिक से परे विधान किया जाता है। जैसे—**कर्त्तव्यम्, तैत्तिरीयः**। यहां कृ धातु और तित्तिरि प्रातिपदिक से 'तव्य' और 'छ' प्रत्यय हुआ है, प्रकृति और प्रत्यय दोनों के स्वर प्राप्त हैं, सो न हों, किन्तु प्रकृतिस्वर को बाध के प्रत्यय का आद्युदात्त स्वर हो जावे ॥ २५ ॥

२६—वा०—सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्वञ्च ॥

[अ० ६ । १ । १५८]

सत्येकस्मिन् स्वरे विशिष्टो द्वितीयः स्वरो बलवान् भवति ॥

'सतिशिष्ट' वह कहाता है कि स्वर के वर्त्तमान में द्वितीय विशेषविधान किया जावे, वही बलवान् रहता है। प्रथम स्वर निवृत्त हो जाता है, और पश्चात् विहित स्वर प्रधान रहता है ॥

वा०—तच्चानेकप्रत्ययसमासार्थम् ॥

[अ० ६ । १ । १५८]

सतिशिष्ट का प्रयोजन यह है कि अनेक प्रत्यय और अनेक समासों में उत्तरोत्तर स्वर बलवान् होता जावे। जैसे—अनेक प्रत्यय—**औपगवः** । यहां उपगु शब्द से 'अण्' हुआ है, उसी का स्वर रहता है। औपगव शब्द से त्व—**औपगवत्वक** । यहां अण् स्वर का बाधक 'त्व' प्रत्यय का स्वर। औपगवत्वमेव **औपगवत्वकम्** । यहां 'त्व' प्रत्यय के स्वर का बाधक 'क' स्वर रहता है। तथा पुरूणां राजा **पौरवः** यहां 'अण्' प्रत्यय का स्वर प्रकृतिस्वर का बाधक। पौरवस्यापत्यम् इञ् **पौरविः** आद्युदात्त। तस्य युवापत्यं फक् **पौरवायणः** अन्तोदात्त। पौरवायणानां समूहः वुञ् **पौरवायणकम्** आद्युदात्त। पौरवायणकानां छात्राः **पौरवायणकीयाः** यहां 'छ' प्रत्यय आद्युदात्त। पौरवायणकीयैः प्रोक्तमधीयते तेऽपि **पौरवायणकीयाः** । 'अण्' का स्वर अन्त में रहता है। इसी प्रकार बहुत कुछ प्रत्ययमाला बन सकती है। अनेक समास—वीरश्चासौ राजा **वीरराजः** । टच् अन्तोदात्त। वीरराजस्य पुरुषः **वीरराजपुरुषः** । वीरराजपुरुषस्य पुत्रः **वीरराजपुरुषपुत्रः** । वीरराजपुरुषपुत्रः प्रधानो येषां ते **वीरराजपुरुषपुत्रप्रधानाः** । यहां पूर्वपदप्रकृतिस्वर होता है। इसी प्रकार के इनसे बहुत बड़े-बड़े समास हो सकते हैं और उनके स्वर भी तदनुकूल हो जावेंगे ॥ २६ ॥

२७—वा०—विभक्तिस्वरान्नञ्स्वरो बलीयान् ॥

[अ० ६ । १ । १५८]

विभक्तिस्वर से नञ्स्वर बलवान् होता है। जैसे—न तिस्रः **अतिस्रः** । यहां विभक्तिस्वर जस् विभक्ति को उदात्त प्राप्त है, उसका बाधक नञ्स्वर पूर्वपदप्रकृतिभाव हो जाता है ॥ २७ ॥

२८—वा०—विभक्तिनिमित्तस्वराच्च नञ्स्वरो बलीयानिति वक्तव्यम् ॥ [अ० ६ । १ । १५८]

विभक्ति जिसका निमित्त है, उसको जो स्वर होता है, उसको बाध के नञ्स्वर होना चाहिये । जैसे—**अचत्वारः, अनडुवाहः** । यहां विभक्ति को मान के जो 'आम्' आगम होता है, उसका बाधक नञ्प्रकृतिस्वर हो जाता है ॥ २८ ॥

२९—ञ्नित्यादिर्नित्यम् ॥ अ० ६ । १ । १९७ ॥

ञित् नित् प्रत्ययों के परे पूर्व प्रकृति को आद्युदात्तस्वर हो । यह सूत्र (२३) सूत्र का अपवाद है, और इसके अपवाद आगे कुछ लिखेंगे । उदाहरण–ञित्–ष्यञ्—**ब्राह्मण्यम्, चातुर्वर्ण्यम्, त्रैलोक्यम्;** यञ्—**गार्ग्यः, शाकल्यः, माधव्यः, बाभ्रव्यः** इत्यादि; इञ्—**दाक्षिः, सौधातकिः, वैयासकिः;** फिञ्–**तकायनिः, कर्तवायनिः** इत्यादि । नित्–वुन्–**वासुदेवकः, अर्जुनकः;** ठन्–**वस्निकः;** कन्–**द्रव्यकः** इत्यादि शब्द आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ २९ ॥

३०—कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः ॥ अ० ६ । १ । १५९ ॥

घञन्त कर्ष धातु और आकारवान् घञन्त शब्दों के अन्त में उदात्त स्वर हो । कर्ष धातु के कहने से भ्वादिगणवाले का ग्रहण होता है । गुणनिषेधवाले तुदादि का ग्रहण नहीं होता । जैसे—**कर्षः, त्यागः रागः, दायः, धायः, पाकः, पाठः** इत्यादि । आकारवान् कहने से कर्ष को प्राप्त नहीं था, इसलिये पृथक् ग्रहण किया है । 'आकारवान्' ग्रहण इसलिये है कि—**मन्थः योगः** यहां न हो ॥ ३० ॥

३१—उञ्छादीनां च ॥ अ० ६ । १ । १६० ॥

उञ्छ आदि गणपठित शब्दों को अन्तोदात्त स्वर हो। जैसे—**उञ्छः, म्लेच्छः, जञ्जः, जल्पः।** इन चार घञन्त शब्दों में आद्युदात्त प्राप्त था, सो न हुआ। **जपः, व्यधः** ये दो शब्द अप् प्रत्ययान्त हैं, इनको भी आद्युदात्त स्वर प्राप्त था।

गणसूत्र-युगःकालविशेषे रथाद्युपकरणे च ॥ १ ॥

युग शब्द कालविशेष अर्थात् कलि युग, द्वापर युग इत्यादि वा पीढ़ी तथा रथ आदि के उपकरण अर्थात् अवयव जुआ आदि अर्थ में अन्तोदात्त होता है, अन्यत्र नहीं होता॥ [जैसे—] **युगः।** घञन्त होने से आद्युदात्त स्वर प्राप्त था।

ग० सू०—गरो दूष्ये ॥ २ ॥

दूष्य अर्थात् विष अर्थ में गर शब्द अन्तोदात्त हो। जैसे—**गरः।** अन्यत्र आद्युदात्त रहेगा।

ग० सू०—वेगवेदवेष्टबन्धाः करणे ॥ ३ ॥

करणकारक में प्रत्यय किया हो तो घञन्त वेग आदि चार शब्द अन्तोदात्त हों। विजयते येन स **वेगः,** वेत्ति येन स **वेदः,** वेष्टते येन स **वेष्टः,** बध्नाति येन स **बन्धः।** और भाव वा अधिकरण में प्रत्यय होगा तो आद्युदात्त ही समझे जावेंगे।

ग० सू०—स्तुयुद्रुवश्च छन्दसि ॥ ४ ॥

क्विबन्त स्तु आदि तीन धातुओं को अन्तोदात्त स्वर हो। जैसे—**परिष्टुत्, संयुत्, परिद्रुत्।** यहां उपसर्गों को प्रकृतिभाव प्राप्त था।

ग० सू०—वर्त्तनिः स्तोत्रे ॥ ५ ॥

जो स्तुति अर्थ में वर्त्तनि शब्द हो तो अन्तोदात्त स्वर हो। जैसे—**वर्त्तनिः** । अन्यत्र अनि प्रत्यय आद्युदात्त होने से मध्योदात्त स्वर होगा। [जैसे]—**वर्त्तनिः** ।

ग० सू०—श्वभ्रे दरः ॥ ६ ॥

श्वभ्र अभिधेय हो तो दर शब्द अन्तोदात्त हो। जैसे—**दरः** । अन्यत्र आद्युदात्त ही समझा जाता है। जैसे—**दरः** ।

ग० सू०—साम्बतापौ भावगर्हायाम् ॥ ७ ॥

भावगर्हा अर्थात् धात्वर्थ की निन्दा में साम्ब और ताप शब्द अन्तोदात्त हों। जैसे—**साम्बः, तापः** । अन्यत्र आद्युदात्त ही समझे जावेंगे।

ग० सू०—उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र ॥ ८ ॥

उत्तम और शश्वत्तम ये दोनों शब्द सामान्य अर्थों में अन्तोदात्त हों। जैसे—**उत्तमः, शश्वत्तमः** ।

तथा **भक्षः, मन्थः, भोगः, देहः** इत्यादि ॥ ३१ ॥

३२—अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः ॥

अ० ६ । १ । १६१ ॥

जिस अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हो उस अनुदात्त को उदात्त हो। जैसे—**औपगव—ई** । यहां ई अनुदात्त के परे अन्तोदात्त औपगव शब्द के अन्त्य वर्ण का लोप होकर ईकार उदात्त हो जाता है=**औपगवी** । तथा **दाक्षायणी, प्लाक्षायणी, कुमारी** इत्यादि। अस्थन्, दधन् शब्द दोनों अन्तोदात्त हैं, तृतीयादि

अजादि विभक्तियों में उपधा अकार का लोप होकर **अस्थ्ना, दध्ना, अस्थ्ने, दध्ने,** इत्यादि। इसी प्रकार इस सूत्र का बहुत विषय है, जहां कहीं अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हो, वहां सर्वत्र इसीसे उदात्त समझा जावेगा। 'यत्र' ग्रहण इसलिये है कि—**भार्गवः, भार्गवौ, भृगवः** यहां जस् विभक्ति के आने से प्रथम ही प्रत्यय का लुक् हो जाता है। 'उदात्त' ग्रहण इसलिये है कि जहां अनुदात्त के परे अनुदात्त ही का लोप हो, वहां उदात्त न हो॥ ३२॥

३३—धातोः॥ अ० ६। १। १६२॥

धातु को अन्तोदात्त स्वर हो। [जैसे—] **पचति, पठति, चिचीषति, तुष्टूषति, ऊर्णोति, पापच्यते, जागर्त्ति, गोपायति** इत्यादि। इनमें जितने अंश की धातु संज्ञा है, उसीको अन्तोदात्त हुआ है॥ ३३॥

३४—चितः॥ अ० ६। १। १६३॥

चित् अर्थात् चकार इत् होके लोप जिस में हो उस समुदाय को अन्तोदात्त स्वर हो। प्रत्यय के आद्युदात्त स्वर का अपवाद यह सूत्र है। [जैसे] घुरच्—**भङ्गुरः, भासुरः, मेदुरः;** कौण्डिन्य को कुण्डिनच् आदेश—**कुण्डिनाः;** अकच्—**सर्वकः, उच्चकैः, नीचकैः;** बहुच्—**बहुकृतम्, बहुभुक्तम्, बहुपटु** इत्यादि॥ ३४॥

३५—तद्धितस्य च॥ अ० ६। १। १६४॥

जो तद्धित चित् प्रत्यय है, वह अन्तोदात्त हो। जैसे—च्फञ्—**कौञ्जायनाः, भौञ्जायनः** इत्यादि। पूर्वसूत्र में चित् के कहने

से यहां भी अन्तोदात्त हो जाता । फिर इस सूत्र का पृथक् आरम्भ इसलिये किया है कि जहां दो अनुबन्धों से दो स्वर प्राप्त हों वहां भी चित् का स्वर अन्तोदात्त ही हो । जैसे च्फञ् प्रत्ययान्तों को हुआ ।। ३५ ।।

३६–कितः ।। अ० ६ । १ । १६५ ।।

जो तद्धित कित् प्रत्यय है, वह अन्तोदात्त हो । जैसे—फक् **नाडायनः, चारायणः, दाक्षायणः**;ठक्—**रैवतिकः, आक्षिकः, कौद्दालिकः, पारिधिकः** ।। ३६ ।।

३७–सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः ।। अ० ६ । १ । १६८ ।।

जो सु अर्थात् सप्तमी के बहुवचन में एकाच् शब्द हो उससे परे जो तृतीयादि विभक्ति वह उदात्त हो । जैसे—**वाचा, वाग्भ्याम्, वाग्भिः, वाचे, वाचः, त्वचे, त्वचः** इत्यादि । 'सु' ग्रहण इसलिये है कि—**राज्ञा, राज्ञे** यहां न हो । 'एकाच्' ग्रहण इसलिये है कि—**किरिणा, गिरिणा** यहां विभक्ति उदात्त न हो । 'तृतीयादि' ग्रहण इसलिये है कि—**वाचौ, वाचः** यहां न हो । 'विभक्ति' ग्रहण इसलिये है कि—**वाक्तरा** यहां न हो । सप्तमी का बहुवचन 'सु' इसलिये लिया है कि—**त्वया** यहां भी विभक्ति उदात्त न हो ।। ३७ ।।

३८–शतुरनुमो नद्यजादी ।। अ० ६ । १ । १७३ ।।

नुम् रहित जो शतृप्रत्ययान्त प्रातिपदिक उससे परे जो नदीसंज्ञक प्रत्यय और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति वह उदात्त हो । [जैसे—] नदीसंज्ञक ङीप्—**तुदती, नुदती,**

लुनती इत्यादि । अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति—**लुनते, लुनतः, लुनतोः, लुनति** । 'अनुम्' ग्रहण इसलिये है कि—**तुदन्तीं, नुदन्तीं** इत्यादि में नदी उदात्त न हो। 'नद्यजादि' ग्रहण इसलिए है कि—**तुदद्भ्याम्, तुदद्भिः** यहां विभक्ति उदात्त न हो ॥ ३८ ॥

३९—वा०—नद्यजाद्युदात्तत्वे बृहन्महतोरुपसंख्यानम् ॥

[अ० ६ । १ । १७३]

जो बृहत् और महत् शब्द से परे नदी और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति है, वह उदात्त हो । जैसे—**बृहती, महती, बृहता बृहते, महता, महते** इत्यादि । पृषत्[1] आदि शब्दों को शतृ प्रत्ययान्त के सब कार्य होते हैं, फिर इस वार्तिक के कहने का प्रयोजन यह है कि पृषत् आदि सब शब्दों से परे नदी और अजादि विभक्ति उदात्त न हो किन्तु बृहत् और महत् से ही हो ॥ ३९ ॥

४०—उदात्तयणो हल्पूर्वात् ॥ अ० ६ । १ । १७४ ॥

हल् वर्ण जिसके पूर्व हो ऐसा जो उदात्त के स्थान में यण्, उससे परे जो नदीसंज्ञक प्रत्यय और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति सो उदात्त हो । जैसे नदी—**कर्त्री, हर्त्री, पक्त्री, लवित्री, प्रसवित्री** इत्यादि । यहां सर्वत्र तृच् अन्तोदात्त के स्थान में यण् हुआ है । अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति—**कर्त्रा, कर्त्रे, कर्त्रोः, लवित्रा, लवित्रे, लवित्रोः** इत्यादि । यहां 'उदात्त'

१ वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च ॥ [उ० २ । ८४] सूत्रविहित पृषत् बृहत् महत् जगत् चार शब्द ॥

ग्रहण इसलिये है कि—**कर्त्री, हर्त्री, कर्त्री, हर्त्री** यहां तृन्नन्त शब्दों के आद्युदात्त होने से अनुदात्त के स्थान में यण् हुआ है। यहां 'हल्पूर्व' ग्रहण इसलिये है कि—**बहुतितवा, बहुतितवे** यहां उदात्त के स्थान में बहुतितउ शब्द के उकार को यण् तो हुआ है परन्तु वह उदात्त केवल अच् था, [अर्थात् उससे पूर्व कोई हल् न था] फिर विभक्ति को उदात्त का निषेध होके आष्टमिक [८ । २ । ४] सूत्र से स्वरित होता है ॥ ४० ॥

४१—वा०—नकारग्रहणं च कर्त्तव्यम् ॥

[अ० ६ । १ । १७४]

जो नकारान्त से परे नदीसंज्ञक प्रत्यय हो वह उदात्त हो। [जैसे—] **वाक्पत्नी, चित्पत्नी** ॥ ४१ ॥

४२—ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् ॥ अ० ६ । १ । १७६ ॥

जो ह्रस्वान्त अन्तोदात्त प्रातिपदिक और नुट् का आगम इन से परे जो मतुप् प्रत्यय हो तो वह उदात्त हो। पित् प्रत्यय के अनुदात्त होने का यह अपवाद है। [जैसे—] ह्रस्व—**अग्निमान्, वायुमान्, भानुमान्, कर्तृमान्** इत्यादि। नुट्—**अक्षण्वता, शीर्षण्वतः, मूर्द्धन्वती** ॥ ४२ ॥

४३—वा०—मतुबुदात्तत्वे रेग्रहणम् ॥

[अ० ६ । १ । १७६]

रे शब्द से परे जो मतुप् हो तो वह भी उदात्त हो। [जैसे—] **आ रेवानै तु नो विशः** । यहां रेवान् शब्द में ह्रस्व के नहीं होने से प्राप्त नहीं था ॥ ४३ ॥

४४—वा०—त्रिप्रतिषेधश्च ॥ [अ० ६ । १ । १७६]

त्रि शब्द से परे मतुप् उदात्त न हो । [जैसे—] **त्रिवती: ।** यहां उदात्त न हुआ ।। ४४ ।।

४५–नामन्यतरस्याम् ।। अ० ६ । १ । १७७ ।।

मतुप् प्रत्यय के परे जो ह्रस्व अङ्ग उससे परे षष्ठी का बहुवचन नाम् विभक्ति हो तो वह विकल्प करके उदात्त हो । जैसे—**अग्नीनाम् , अग्नीनाम्, वायूनाम् , वायूनाम् ; तिसृणाम्, तिसृणाम्; चतसृणाम्, चतसृणाम् ।** यहां 'ह्रस्व' ग्रहण इसलिये है कि— **कुमारीणाम् किशोरीणाम्** इत्यादि में विभक्ति उदात्त न हो ।। ४५ ।।

४६–ङ्याश्छन्दसि बहुलम् ।। अ० ६ । १ । १७८ ।।

जो ङ्यन्त से परे नाम् हो तो वह बहुल कर के उदात्त हो, अर्थात् कहीं हो और कहीं न हो । [जैसे—] **देवसेनानामभिभञ्जतीनाम् ।** यहां [नाम् विभक्ति उदात्त] हो गई, तथा **नदीनां परि जयन्तीनां मरुतः** यहां [नाम्] विभक्ति उदात्त नहीं होती ।। ४६ ।।

४७–तित्स्वरितम् ।। अ० ६ । १ । १८५ ।।

जो तित् प्रत्यय है वह स्वरित हो । यह आद्युदात्त प्रत्ययस्वर का अपवाद है । [जैसे—] यत्—**चिकीर्ष्यम् , जिहीर्ष्यम्, चिचीर्ष्यम् , तुष्टूर्ष्यम् ।** ण्यत्—**कार्यम् , हार्यम्** इत्यादि ।।४७।।

४८–तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमहन्विङोः ।। अ० ६ । १ । १८६ ।।

तासि प्रत्यय, अनुदात्तेत्धातु, ङित् धातु और अदुपदेश इनसे परे लकार के स्थान में जो सार्वधातुकसंज्ञक तिप् आदि प्रत्यय

वे अनुदात्त हों, परन्तु यह कार्य ह्नुङ् और इङ् धातु को छोड़ के होवे, क्योंकि ये दोनों ङित् हैं । जैसे—तासि प्रत्यय—**कर्त्ता, कर्त्तारौ, कर्त्तारः** । अनुदात्तात्—**आस्ते, आसाते, आसते** । ङित्—**शेते, सूते, दीधीते, वेवीते** । अदुपदेश—**पठतः, पठन्ति, पचतः, पचन्ति** । 'तासि आदि से परे' ग्रहण इसलिये है कि— **सुनुतः, सुवन्ति** यहां न हो । 'लसार्वधातुक' ग्रहण इसलिये है कि—**सुषुवे, सुषुवाते** यहां न हो । और ह्नुङ् तथा इङ् का निषेध इसलिये है कि—**ह्नुते, अधीते** यहां अनुदात्त न हो ।। ४८ ।।

४९–लिति ।। अ० ६ । १ । १९३ ।।

लकार जिसका इत् संज्ञक हो उस प्रत्यय से पूर्व उदात्त हो । जैसे—**चिकीर्षकः, जिहीर्षकः** । यहां चिकीर्ष जिहीर्ष धातु से ण्वुल् हुआ है । **भौरिकिविधम्** यहां तद्धित का विधल् प्रत्यय है, और **ऐषुकारिभक्तः** यहां तद्धित का भक्तल् प्रत्यय हुआ है, इत्यादि ।। ४९ ।।

५०–आमन्त्रितस्य च ।। अ० ६ । १ । १९८ ।।

जो आमन्त्रित अर्थात् सम्बोधन में प्रथमा विभक्त्यन्त शब्द हों उन को आद्युदात्त स्वर हो जाता है । जैसे—**अग्ने, वायो, इन्द्र, देवदत्त, देवदत्तौ, देवदत्ताः, धनञ्जय** इत्यादि ।। ५० ।।

५१–यतोऽनावः ।। अ० ६ । १ । २१३ ।।

दो अच् वाले यत्प्रत्ययान्त शब्दों को आद्युदात्त स्वर हो, परन्तु नौ शब्द को छोड़ के । जैसे—**देयम्, धेयम्, चेयम्,**

जेयम्; शरीरावयवाद्यत्—**कण्ठ्यम्**, **ओष्ठ्यम्**, **जङ्घ्यम्**, **जिह्व्यम्**, इत्यादि। (तित्स्वरितम्) इस पूर्व लिखित सूत्र से [तित् प्रत्ययान्त] द्वयच् प्रातिपदिकों को भी स्वरित पाता है सो उसका अपवाद यह सूत्र है। 'द्वयच्' ग्रहण इसलिये है कि—**उरस्यम्**, **ललाट्यम्**, **नासिक्यम्** यहां आद्युदात्त न हो। 'नौ' शब्द का निषेध इसलिये है कि—**नाव्यम्** यहां भी आद्युदात्त न हो॥ ५१॥

५२—समासस्य॥ अ० ६। १। २२३॥

समास किये शब्दमात्र को अन्तोदात्तस्वर हो। अब समास के स्वर का थोड़ासा विषय लिखा जाता है। समास के स्वर का सामान्यसूत्र यह है। और यह सब समास के स्वर का उत्सर्ग सूत्र है, आगे सब प्रकरण इसका अपवाद है। [जैसे—] **राजपुरुषः**, **ब्राह्मणकम्बलः**, **नदीघोषः**, **पटहशब्दः**, **वीरपुरुषः**, **परमेश्वरः** इत्यादि॥ ५२॥

५३—परिभा०—स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्॥

उदात्तादि स्वरों के विधान में व्यञ्जन वर्णों को अविद्यमानवत् समझना चाहिये। जैसे—**राजदृषत्**, **ब्राह्मणसमित्**। यहां समासान्त हल् वर्ण के होने से उस हल् को उदात्त प्राप्त है, उस को अविद्यमानवत् मान के उस से पूर्व वर्ण को उदात्त हो जाता है। इसी प्रकार और भी बहुत से प्रयोजन हैं॥ ५३॥

अब समासस्वर का विशेष नियम कुछ लिखते हैं—

५४—बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्॥ अ० ६। २। १॥

जो बहुव्रीहि समास में पूर्वपद का स्वर हो वह प्रकृति करके अर्थात् अन्तोदात्त न हो और ज्यों का त्यों बना रहे।

जैसे—**स्थूलपृषती, हिरण्यबाहुः, ब्रह्मचारिपरिस्कन्दः, स्नातकपुत्रः, पण्डितपुत्रः, अध्यापकपुत्रः** इत्यादि ॥ ५४ ॥

५५—तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः ॥ अ० ६ । २ । २ ॥

तत्पुरुष समास में जो तुल्यार्थ, तृतीयान्त, सप्तम्यन्त, उपमानवाची, अव्यय द्वितीयान्त और कृत्यप्रत्ययान्त पूर्वपद हो तो उसमें प्रकृतिस्वर हो । जैसे—तुल्यार्थ—**तुल्यश्वेतः, तुल्यलोहितः, तुल्यमहान्, सदृक्श्वेतः, सदृग्लोहितः** । यहां तुल्यार्थ शब्दों के साथ कर्मधारय तत्पुरुष समास हुआ है। तृतीयातत्पुरुष—शङ्कुलया खण्डः **शङ्कुलाखण्डः, किरिकाणः** । सप्तमीतत्पुरुष—**अक्षशौण्डः, पानशौण्डः** । उपमानवाची—**घनश्यामः, तडिद्गौरी, शस्त्रीश्यामा, कुमुदश्येनी** इत्यादि । अव्यय पर—

५६—वा०—अव्यये नञ्कुनिपातानाम् ॥

[अ० ६ । २ । २ ॥]

अव्यय के कहने से सामान्य अव्यय का ग्रहण न हो इसलिये इस वार्त्तिक से परिगणन किया है कि—अव्ययों में नञ्, कु और निपातों को ही पूर्वपद प्रकृतिस्वर हो जैसे—नञ्—**अब्राह्मणः, अवृषलः** । कु—**कुब्राह्मणः, कुवृषलः,** । निपात—**निष्कौशाम्बिः निर्वाराणसिः** । परिगणन इसलिये है कि—**स्नात्वाकालकः, पीत्वास्थिरकः** यहां पूर्वपदप्रकृतिस्वर न हो । द्वितीयान्त—**मुहूर्त्तसुखम्, मुहूर्त्तरमणीयम्, सर्वरात्रकल्याणी,**

सर्वगात्रशोभना । यहां अत्यन्तसंयोग में द्वितीया का समास है । कृत्यान्त - भोज्यञ्च तदुष्णं च **भोज्योष्णम्, भोज्यलवणम्, पानीयशीतम्, हरणीयचूर्णम्** इत्यादि ।। ५५-५६ ।।

५७—गतिरनन्तरः ।। अ० ६ । २ । ४९ ।।

जो कर्मवाची क्तान्त उत्तरपद परे और अनन्तर अर्थात् समीप गति हो तो वह प्रकृतिस्वर हो । जैसे—**प्रकृतः, प्रहृतः** इत्यादि । 'अनन्तर' ग्रहण इसलिये है कि—**अभ्युद्धृतम्** **उपसमाहृतम्** इत्यादि में पूर्वपदप्रकृतिस्वर न हो । 'कर्मवाची' का ग्रहण इसलिये है कि— **प्रकृतः कटं देवदत्तः** यहां कर्त्ता में क्त प्रत्यय है इसलिये नहीं होता ।। ५७ ।।

यह पूर्वपदप्रकृतिस्वर पूरा हुआ । अब पूर्वपद आद्युदात्त आदि प्रकरण कुछ-कुछ लिखेंगे—

५८—आदिरुदात्तः ।। अ० ६ । २ । ६४ ।।

पूर्वपद आद्युदात्त होने के लिये यह अधिकार सूत्र है ।। ५८ ।।

५९—णिनि ।। अ० ६ । २ । ७९ ।।

णिनि प्रत्ययान्त उत्तरपद परे हो तो पूर्वपद आद्युदात्त हो । जैसे—**उष्णभोजी, शीतभोजी, स्थण्डिलशायी, पण्डितमानी, सोमयाजी, कुमारघाती, शीर्षघाती, फलहारी, पर्णहारी** इत्यादि ।। ५९ ।।

६०—अन्तः ।। अ० ६ । २ । ९२ ।।

पूर्वपद अन्तोदात्त प्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ।। ६० ।।

६१—सर्वं गुणकार्त्स्न्ये ।। अ० ६ । २ । ९३ ।।

जो गुणों की सम्पूर्णता अर्थ में वर्त्तमान पूर्वपद सर्व शब्द हो तो वह अन्तोदात्त हो । जैसे—**सर्वश्वेतः, सर्वकृष्णः, सर्वलोहितः, सर्वहारितः, सर्वश्यामः, सर्वसारङ्गः, सर्वकल्माषः, सर्वमहान्** इत्यादि ॥ ६१ ॥

६२—उत्तरपदादिः ॥ अ० ६ । २ । १११ ॥

उत्तरपद आद्युदात्त प्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६२ ॥

६३—अकर्मधारये राज्यम् ॥ अ० ६ । २ । १३० ॥

कर्मधारय समास से भिन्न तत्पुरुष समास में जो राज्य उत्तरपद हो तो वह आद्युदात्त हो । जैसे—**ब्राह्मणराज्यम्, क्षत्रियराज्यम्, यवनराज्यम्, कुरुराज्यम्** इत्यादि ॥ ६३ ॥

अब उत्तरपद तथा उभयपद प्रकृतिस्वर के विषय में कुछ लिखते हैं :—

६४—गतिकारकोपपदात्कृत् ॥ अ० ६ । २ । १३९ ॥

जो तत्पुरुषसमास में गति, कारक और उपपद से परे कृदन्त उत्तरपद हो तो वह प्रकृतिस्वर हो । जैसे—गति—**प्रकारकः, प्रहारकः, प्रकरणम्, प्रहरणम्** । कारक **इध्मप्रव्रश्चनः, पलाशशातनः, श्मश्रुकल्पनः** । उपपद—**ईषत्करः, दुष्करः, सुकरः** । 'गतिकारकोपपद' ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्तस्य कारको **देवदत्तकारकः** यहाँ न हो ॥ ६४ ॥

६५—उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ अ० ६ । २ । १४० ॥

वनस्पति आदि समास किये हुये शब्दों में पूर्वपद उत्तरपद दोनों एककाल में प्रकृतिस्वर हों । [जैसे—] **वनस्पतिः** ।

यहां वन और पति दोनों शब्द आद्युदात्त हैं। पति शब्द को समास में सुट् हो जाता है। **बृहस्पतिः** यहां भी सुट् हुआ है। **शचीपतिः, तनूनपात्, नराशंसः, शुनःशेपः, शण्डामर्कौ, तृष्णावरूत्री, अम्बाविश्ववयसौ, मर्मृत्युः** ॥ ६५ ॥

६६—देवताद्वन्द्वे च ॥ अ० ६। २। १४१॥

देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में एककाल में दोनों शब्द प्रकृतिस्वर हों। [जैसे—] **इन्द्रासोमौ, इन्द्रावरुणौ, इन्द्राबृहस्पती, द्यावापृथिव्यौ, सोमारुद्रौ, इन्द्रापूषणौ, शुक्रामन्थिनौ** इत्यादि ॥ ६६ ॥

६७—अन्तः ॥ अ० ६। २। १४३॥

उत्तरपद अन्तोदात्त प्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥६७॥

६८—थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् ॥ अ० ६। २। १४४॥

गति, कारक और उपपद से परे जो थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप, इत्र, और क इतने प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद उनको अन्तोदात्तस्वर हो। जैसे - थ - **सुनीथः, अवभृथः**। अथ— **आवसथः, उपवसथः**। घञ्—**प्रभेदः, काष्ठभेदः, रज्जुच्छेदः**। क्त—**दूरादागतः, विशुष्कः, आतपशुष्कः**। अच्—**प्रणयः, विनयः, विजयः, आश्रयः, व्यत्ययः, अन्वयः** इत्यादि। अप्— **प्रलवः, प्रसवः**। इत्र—**प्रलावित्रम्, प्रसवित्रम्**। क— **गोदः, कम्बलदः, शंस्थः, गृहस्थः, वनस्थः** इत्यादि ॥६८॥

अब इसके आगे अनुदात्त का प्रकरण संक्षेप से लिखते हैं—

६९–पदात् ॥ अ० ८ । १ । १७ ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे पद से परे कार्य होगा ॥ ६९ ॥

७०–पदस्य ॥ अ० ८ । १ । १६ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो कार्य कहेंगे वह पद के स्थान में समझा जावेगा ॥ ७० ॥

७१–अनुदात्तं सर्वमपादादौ ॥ अ० ८ । १ । १८ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है। अपादादि अर्थात् जो पाद की आदि में न हो किन्तु मध्य वा अन्त में हो तो पद से परे सब पद अनुदात्त हो। यह अधिकार चलेगा ॥ ७१ ॥

७२–आमन्त्रितस्य च ॥ अ० ८ । १ । १९ ॥

जो पद से परे अपादादि में वर्त्तमान आमन्त्रित पद हो तो वह सब अनुदात्त होवे। जैसे—**पठसि देवदत्त, जुहोसि देवदत्त ।** आमन्त्रित पद को पूर्वोक्त (५०) सूत्र से आद्युदात्त प्राप्त था; इसलिये यह विधान है ॥ ७२ ॥

७३–परिभाषा०–आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् ॥
अ० ८ । १ । ७२ ॥

पद से परे जिस पद का अनुदात्त आदि विधान करते हैं उससे पूर्व जो आमन्त्रित हो तो उसको अविद्यमानवत् समझना चाहिये, अर्थात् पूर्व कुछ नहीं है ऐसा माना जावे। जैसे—**देवदत्त यज्ञदत्त ।** यहां यज्ञदत्त शब्द को पद से परे निघात नहीं हुआ। तथा **देवदत्त पचसि** यहां अविद्यमानवत् होने से क्रिया को निघात नहीं होता। तथा **देवदत्त तव ग्रामः स्वम् । देवदत्त मम ग्रामः स्वम्** यहां पद से परे 'ते' 'मे' आदेश नहीं होते, इत्यादि ॥ ७३ ॥

७४–नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् ॥

अ० ८ । १ । ७३ ॥

सामान्यवचन समानाधिकरण आमन्त्रित पद परे हो तो पूर्व जो आमन्त्रित पद है वह अविद्यमानवत् न हो। जैसे—**अग्ने व्रतपते** [यजु० १ । ५], **अग्ने गृहपते** [यजु० २ । २७], **पृथिवि देवयजनि** [यजु० १ । २५]। अर्थात् पद से परे निघात आदि कार्य हो जावें। 'समानाधिकरण' ग्रहण इसलिये है कि पूर्व सूत्र के विषय में यह सूत्र न लगे। 'सामान्यवचन' ग्रहण का प्रयोजन यह है कि—**अघ्न्ये देवि सरस्वति इडे काव्ये विहव्ये** यहां पर्यायवाची शब्दों में न हो ॥ ७४ ॥

७५–विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम् ॥

अ० ८ । १ । ७४ ॥

विशेषवचन समानाधिकरण आमन्त्रित पद परे हो तो पूर्व जो आमन्त्रित पद है वह विकल्प करके अविद्यमानवत् हो। जैसे—**देवा ब्रह्माणः, देवा ब्रह्माणः, ब्राह्मणा वैयाकरणाः, ब्राह्मणा वैयाकरणाः** इत्यादि। यहां अविद्यमानवत् पक्ष में दोनों पद के स्वर और विद्यमानवत् पक्ष में उत्तरपद निघात हो जाता है। 'विशेषवचन' ग्रहण इसलिये है कि—**माणवक जटिलक** यहां विकल्प न हो ॥ ७५ ॥

७६–युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ ॥

अ० ८ । १ । २० ॥

षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के सह वर्त्तमान अपादादि में पद से परे जो युष्मद्-अस्मद् पद उनको क्रम से वाम् और नौ आदेश हों और वे सब अनुदात्त हों। जैसे—षष्ठीस्थ—

ग्रामो वां स्वम्, जनपदो नो स्वम् । चतुर्थीस्थ—**ग्रामो वां दीयते, जनपदो नो दीयते** । द्वितीयास्थ—**माणवको वां पश्यति, माणवको नो पश्यति** इत्यादि । इस सूत्र में 'स्थ' ग्रहण इसलिये है कि—**दृष्टो मया युष्मत्पुत्रः** यहां षष्ठी का लुक् हो जाने से आदेश और अनुदात्त नहीं होता ।। ७६ ।।

७७—बहुवचनस्य वस्नसौ ।। अ० ८ । १ । २१ ।।

षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के सह वर्त्तमान अपादादि में पद से परे बहुवचनान्त जो युष्मद्-अस्मद् पद उनको क्रम से वस् और नस् आदेश हों तथा वे सब अनुदात्त हों। जैसे—**नमो वः पितरः** [यजु० २ । ३२], **नमो वो देवाः, मा नो वधीः** [यजु० १६ । १५], **मा नो गोषु मा नो ऽश्वेषु रीरिषः** [यजु० १६ । १६], **शन्नः** [यजु० ३६ । १२] इत्यादि ।। ७७ ।।

७८—तेमयावेकवचनस्य ।। अ० ८ । १ । २२ ।।

अपादादि में वर्त्तमान पद से परे जो एकवचनान्त युष्मद् अस्मद् पद उनको ते, मे, आदेश हों और वे सब अनुदात्त हों। जैसे—**गुरुस्ते पण्डितः, गुरुर्मे पण्डितः, देहि मे, ददामि ते** इत्यादि ।। ७८ ।।

७९—त्वामौ द्वितीयायाः ।। अ० ८ । १ । २३ ।।

पद से परे अपादादि में वर्त्तमान द्वितीयैकवचनान्त जो युष्मद् अस्मद् पद उनको त्वा, मा आदेश हों और वे सब आद्युदात्त हों। जैसे—**कस्त्वा युनक्ति** [यजु० १ । ६], **स त्वा युनक्ति** [यजु० १ । ६], **पुनन्तु मा** [यजु० १९ । ३९] इत्यादि ।। ७९ ।।

८०—तिङ्ङतिङः ॥ अ० ८ । १ । २८ ॥

जो अपादादि में अतिङन्त पद से परे तिङन्त पद हो तो वह सब अनुदात्त हो जावे । जैसे—**त्वं पचसि, अहं पठामि, स गच्छति, तौ गच्छतः** इत्यादि । यहां 'तिङ्' ग्रहण इसलिये है कि—**शुक्लं वस्त्रम्** यहां नहीं होता । 'अतिङ्' ग्रहण इसलिये है कि—**पठति पचति** यहाँ न हो ॥ ८० ॥

८१—यावद्यथाभ्याम् ॥ अ० ८ । १ । ३६ ॥

जो यावत् और यथा से युक्त तिङन्त पद हो तो वह अनुदात्त न हो । जैसे—**यावद् भुङ्क्ते, यथा भुङ्क्ते, यावदधीते, यथाऽधीते, देवदत्तः पचति यावत्, देवदत्तः पचति यथा** इत्यादि ॥ ८१ ॥

८२—यद्वृत्तान्नित्यम् ॥ अ० ८ । १ । ६६ ॥

जो यत् शब्द के प्रयोग से युक्त तिङन्त पद हो तो वह अनुदात्त न हो । जैसे—**यो भुङ्क्ते, यं भोजयति, येन भुङ्क्ते** इत्यादि ॥ ८२ ॥

८३—गतिर्गतौ ॥ अ० ८ । १ । ७० ॥

जो गति से परे पूर्व गति हो तो वह निघात हो जाती है । जैसे—**अभ्युद्धरति, समुदानयति, उपसंव्यानयति, उपसंहरति, अभ्यवहरति** इत्यादि ॥ ८३ ॥

८४—उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य ॥

अ० ८ । २ । ४ ॥

जो उदात्त और स्वरित के स्थान में यण् उससे परे अनुदात्त हो तो उसको स्वरित हो जावे । जैसे—**सुप्वा** [यजु० १ । ३] यहां सुपू शब्द अन्तोदात्त और विभक्ति अनुदात्त है उसको

स्वरित हो जाता है। नीचे जो ⌞ यह वक्र चिह्न होता है वह भी स्वरित ही का चिह्न है। इसी प्रकार **पृथिव्यांसि** [यजु० १। २] यहां पृथिवी शब्द अन्तोदात्त है, उससे परे अकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है। स्वरित यण्-सक्लिव+आशा, खलप्वि+आशा, यहां 'सक्लिव' 'खलप्वि' सप्तम्यन्त स्वरितान्त शब्द हैं, उनके यण् से परे आकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है=**सक्ल्व्यांशा, खलप्व्यांशा** इत्यादि ॥ ८४ ॥

८५—एकादेश उदात्तेनोदात्तः ॥ अ० ८। २। ५॥

उदात्त के साथ जो अनुदात्त का एकादेश है वह भी उदात्त ही हो जाता है। जैसे—**अग्नी, वायू।** यहां अग्नि, वायु शब्द अन्तोदात्त हैं, उनका अनुदात्त विभक्ति के साथ एकादेश हुआ है। इसी प्रकार **वृक्षैः, प्लक्षैः** इत्यादि ॥ ८५ ॥

८६—स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ ॥ अ० ८। २। ६॥

जो उदात्त के साथ एकादेश है वह पदादि अनुदात्त के परे विकल्प करके स्वरित हो, पक्ष में उदात्त हो। [जैसे—] सु+उत्थितः=**सूत्थितः, सूत्थितः।** वि+ईक्षते=**वीक्षते, वीक्षते** इत्यादि ॥ ८६ ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीनिर्मितः सौवरो ग्रन्थः समाप्तः

संवत् १९३९ भाद्र शुक्ल १३

चन्द्रवार ॥

※ ओ३म् ※

ऋषि कृत

शिक्षा व व्याकरण ग्रन्थ

※ वर्णोच्चारण शिक्षा

※ संधि विषय

※ नामिक

※ कारकीय

※ सामासिक

※ स्त्रैणताद्धित

※ अव्ययार्थ

※ आख्यातिक सजिल्द

※ सौवर

※ पारिभाषिक

※ धातुपाठ

※ गणपाठ

※ उणादिकोष

※ निघण्टु

※ संस्कृतवाक्यप्रबोध

※ व्यवहारभानु:

※ निरुक्त मूल

※ अष्टाध्यायी मूल

※ अष्टाध्यायी भाष्य

अध्याय ३ तक (दो भागों में)

अवश्य पढ़ें ※※